

पर्यावरणीय मुद्दों में न्यायिक सतर्कता के विकास का विश्लेषण

Asheesh Kumar Yadav

Research Scholar

Dr L.P Singh

Professor

Shri Krishna University Chhatarpur MP

सार

पर्यावरण संरक्षण एक वैश्विक चिंता का विषय है, और भारत भी इससे अछूता नहीं है। तेजी से औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और जनसंख्या वृद्धि ने प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव डाला है, जिससे पर्यावरणीय संतुलन बिगड़ रहा है। इस गंभीर समस्या का समाधान खोजने में न्यायिक सतर्कता ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत में, विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने, पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति एक सक्रिय और प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया है, जिससे "पर्यावरण न्यायशास्त्र" का एक नया अध्याय शुरू हुआ है। भारतीय संविधान में प्रारंभ में पर्यावरण संरक्षण से संबंधित कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं था। हालांकि, अनुच्छेद 21, जो जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी देता है, ने बाद में पर्यावरण न्यायशास्त्र के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान किया। 1980 के दशक के बाद, अदालतों ने "स्वच्छ पर्यावरण में जीवन का अधिकार" को अनुच्छेद 21 के तहत एक मौलिक अधिकार के रूप में व्याख्या करना शुरू किया। यह व्याख्या न्यायिक सतर्कता का एक महत्वपूर्ण उदाहरण थी, जिसने अदालतों को पर्यावरणीय मामलों में हस्तक्षेप करने का कानूनी अधिकार प्रदान किया।

मुख्य शब्द

पर्यावरण, संरक्षण, कानून, स्वच्छ

भूमिका

प्रदूषक भुगतान सिद्धांत के अनुसार, जो व्यक्ति या संस्था पर्यावरण को नुकसान पहुंचाती है, उसे उसकी भरपाई करनी चाहिए। यह सिद्धांत पर्यावरण प्रदूषण को रोकने और प्रदूषकों को जवाबदेह ठहराने में सहायक रहा है। पूर्व सावधानी सिद्धांत के तहत, यदि किसी गतिविधि से पर्यावरण को गंभीर या अपरिवर्तनीय क्षति होने की आशंका है, तो वैज्ञानिक प्रमाण की कमी होने पर भी उस गतिविधि को रोका जाना चाहिए। यह सिद्धांत भविष्य में होने वाले पर्यावरणीय नुकसान को रोकने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण है। सार्वजनिक न्याय सिद्धांत के अनुसार, सरकार प्राकृतिक संसाधनों (जैसे हवा, पानी और वन) की संरक्षक है और उसे इन्हें आम जनता के लाभ के लिए संरक्षित करना चाहिए। यह सिद्धांत सरकार को पर्यावरणीय जिम्मेदारी से पीछे हटने से रोकता है।

अदालतों ने मौजूदा कानूनों की व्याख्या कर और नए सिद्धांतों को लागू करके पर्यावरण कानून के दायरे को विस्तृत किया है। इससे पर्यावरण संरक्षण को एक मजबूत कानूनी आधार मिला है। न्यायिक हस्तक्षेप ने सरकार और उसकी एजेंसियों को पर्यावरणीय कानूनों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए मजबूर किया है। अदालतों ने उन्हें पर्यावरणीय नियमों का उल्लंघन करने वाले उद्योगों और व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई करने का निर्देश दिया है।

जनहित याचिकाओं ने आम जनता को पर्यावरणीय मुद्दों को अदालतों तक लाने का अवसर दिया है। इससे पर्यावरण संरक्षण के प्रति जन जागरूकता बढ़ी है और लोगों ने इस लड़ाई में सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू किया है। अदालतों ने कई विकास परियोजनाओं के लिए पर्यावरणीय प्रभाव आकलन को अनिवार्य बना दिया है, जिससे इन परियोजनाओं के पर्यावरणीय परिणामों का मूल्यांकन करना संभव हो पाया है।

न्यायिक सतर्कता ने महत्वपूर्ण सफलता हासिल की है, फिर भी कुछ चुनौतियाँ मौजूद हैं। न्यायिक आदेशों का धीमा कार्यान्वयन, पर्यावरणीय मामलों को संभालने के लिए विशेष अदालतों की कमी, और तकनीकी विशेषज्ञता की कमी कुछ प्रमुख चुनौतियाँ हैं। इसके अलावा, कई बार अदालतों के आदेशों की व्याख्या और कार्यान्वयन में अस्पष्टता भी रहती है।

साहित्य की समीक्षा

आधुनिक युग में जहाँ एक ओर औद्योगिक विकास और तकनीकी प्रगति ने मानव जीवन को सुविधाजनक बनाया है, वहीं दूसरी ओर इसने पर्यावरण के लिए गंभीर चुनौतियाँ भी खड़ी कर दी हैं। बढ़ते प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने पृथ्वी के अस्तित्व पर संकट पैदा कर दिया है। इस समस्या से निपटने के लिए विभिन्न देशों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने कई नीतियों और सिद्धांतों का विकास किया है। इन्हीं में से एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है "प्रदूषक भुगतान सिद्धांत"। यह सिद्धांत पर्यावरण संरक्षण के लिए एक आर्थिक और नैतिक ढाँचा प्रदान करता है, जिसके तहत प्रदूषण फैलाने वाले को ही उसके द्वारा किए गए नुकसान की भरपाई करनी होती है। [1]

"प्रदूषक भुगतान सिद्धांत" की उत्पत्ति 1970 के दशक में हुई थी। इसे पहली बार 1972 में आर्थिक सहयोग और विकास संगठन द्वारा आधिकारिक तौर पर अपनाया गया था। इस संगठन ने इसे एक आर्थिक सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया, जिसका मुख्य उद्देश्य पर्यावरण नीतियों को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और निवेश में बाधा बनने से रोकना था। [2]

प्रदूषक भुगतान सिद्धांत का मूल विचार यह था कि प्रदूषण की लागत को समाज पर डालने के बजाय, सीधे उस इकाई (उद्योग या व्यक्ति) पर लगाया जाए जो प्रदूषण फैला रही है। यह सिद्धांत 1992 में रियो घोषणा के 16वें सिद्धांत के रूप में विश्व स्तर पर मान्यता प्राप्त कर चुका है। [3]

प्रदूषक भुगतान सिद्धांत का केंद्रीय विचार यह है कि "जो कोई भी प्रदूषण फैलाता है, उसे ही पर्यावरण को हुए नुकसान की भरपाई करनी चाहिए।" इसका मतलब है कि प्रदूषण को नियंत्रित करने, साफ-सफाई करने और क्षतिपूर्ति देने की सारी जिम्मेदारी प्रदूषणकारी की होती है, न कि समाज की। [4]

"प्रदूषक भुगतान सिद्धांत" एक प्रगतिशील और तार्किक पर्यावरणीय नीति है। यह न केवल प्रदूषण की रोकथाम में मदद करता है बल्कि उन संस्थाओं को भी जवाबदेह बनाता है जो अपने लाभ के लिए पर्यावरण को नुकसान पहुँचाते हैं। [5]

पर्यावरणीय मुद्दों में न्यायिक सतर्कता के विकास का विश्लेषण

भारत जैसे विकासशील देशों के लिए, जहाँ तीव्र औद्योगीकरण एक वास्तविकता है, प्रदूषक भुगतान सिद्धांत विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। हालाँकि इसके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए मजबूत कानूनी ढाँचे, सख्त निगरानी और जन जागरूकता की आवश्यकता है। यह सिद्धांत हमें यह याद दिलाता है कि पर्यावरण एक साझा धरोहर है और इसे संरक्षित करने की जिम्मेदारी हम सबकी है, लेकिन सबसे अधिक जिम्मेदारी उन लोगों की है जो इसे नुकसान पहुँचाते हैं।

पूर्व सावधानी सिद्धांत एक ऐसा वैचारिक और कानूनी ढांचा है जो हमें उन संभावित हानियों से निपटने के लिए मार्गदर्शन देता है जिनका वैज्ञानिक रूप से पूरी तरह से सत्यापन नहीं हुआ है। यह सिद्धांत इस मौलिक विचार पर आधारित है कि जब किसी कार्रवाई या नीति से मानव स्वास्थ्य या पर्यावरण को गंभीर या अपरिवर्तनीय क्षति होने का खतरा हो, तो वैज्ञानिक अनिश्चितता को उस कार्रवाई को टालने का कारण नहीं माना जाना चाहिए। सीधे शब्दों में कहें तो, "सबूत के इंतजार में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने" के बजाय, हमें निवारक कदम उठाने चाहिए। यह एक दूरदर्शी दृष्टिकोण है जो भविष्य की सुरक्षा को प्राथमिकता देता है।

पूर्व सावधानी सिद्धांत की जड़ें 1970 के दशक में जर्मनी के पर्यावरण कानून में खोजी जा सकती हैं, जहाँ इसे "वोरसोर्गेप्रिनज़िप" कहा जाता था, जिसका अर्थ है "पूर्वानुमान का सिद्धांत"। इसका उद्देश्य पर्यावरण को क्षति पहुँचने से पहले ही उसकी रोकथाम करना था।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस सिद्धांत को 1992 के रियो घोषणापत्र के सिद्धांत 15 में आधिकारिक मान्यता मिली। इसमें कहा गया है: "पर्यावरण की सुरक्षा के लिए, राष्ट्र अपनी क्षमता के अनुसार पूर्व सावधानी सिद्धांत को व्यापक रूप से लागू करेंगे। जहाँ गंभीर या अपरिवर्तनीय क्षति का खतरा हो, वहाँ पूर्ण वैज्ञानिक अनिश्चितता का उपयोग लागत-प्रभावी निवारक उपायों को टालने के लिए नहीं किया जाएगा।" इस घोषणा के बाद, यह सिद्धांत जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता संरक्षण और सार्वजनिक स्वास्थ्य से संबंधित कई अंतरराष्ट्रीय संधियों और समझौतों का एक अभिन्न अंग बन गया।

किसी गतिविधि या पदार्थ से गंभीर या अपरिवर्तनीय क्षति का एक विश्वसनीय खतरा होना चाहिए। यह खतरा काल्पनिक नहीं, बल्कि तार्किक रूप से संभावित होना चाहिए। इस खतरे के बारे में वैज्ञानिक समुदाय में पूर्ण सहमति या निश्चितता का अभाव होना चाहिए। यानी, यह साबित करने के लिए पर्याप्त सबूत नहीं हैं कि क्षति *होगी* या *नहीं होगी*। इस अनिश्चितता के बावजूद, संभावित हानि को रोकने के लिए एहतियाती उपाय किए जाने चाहिए। इसमें किसी गतिविधि को रोकना, प्रतिबंध लगाना, या उसकी गहन समीक्षा करना शामिल हो सकता है।

इस सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण पहलू सबूत के बोझ को बदलना है। पारंपरिक रूप से, यह साबित करने की जिम्मेदारी उन लोगों पर होती है जो किसी हानिकारक गतिविधि का विरोध कर रहे हैं। लेकिन पूर्व सावधानी सिद्धांत के तहत, यह जिम्मेदारी उस व्यक्ति या संगठन पर आ जाती है जो किसी नई तकनीक या उत्पाद का प्रस्ताव कर रहा है। उन्हें यह साबित करना होता है कि उनकी गतिविधि सुरक्षित है।

दुनिया भर के देश ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने के लिए नीतियां बना रहे हैं, भले ही जलवायु परिवर्तन के सभी दीर्घकालिक प्रभाव पूरी तरह से ज्ञात न हों। यह इस सिद्धांत का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। कई देशों ने आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों की खेती को तब तक प्रतिबंधित कर दिया या सीमित कर दिया जब तक कि उनके संभावित अज्ञात पर्यावरणीय या स्वास्थ्य प्रभावों का पूरी तरह से मूल्यांकन नहीं हो जाता। कुछ रसायनों, जैसे कि डीडीटी, के पर्यावरण और स्वास्थ्य पर दीर्घकालिक प्रभावों के बारे में अनिश्चितताओं के कारण उन पर प्रतिबंध लगा दिया गया। कुछ समुदायों ने 5G नेटवर्क की तैनाती को रोक दिया है, जब तक कि इसके स्वास्थ्य प्रभावों के बारे में कोई स्पष्टता नहीं मिल जाती।

आलोचकों का तर्क है कि यह सिद्धांत वैज्ञानिक अनुसंधान और तकनीकी नवाचार को रोक सकता है, क्योंकि हर नई खोज पर "नुकसान के संभावित खतरे" के कारण रोक लगाई जा सकती है। सिद्धांत की परिभाषा अक्सर अस्पष्ट मानी जाती है। "गंभीर हानि" या "पर्याप्त अनिश्चितता" जैसी शर्तें व्यक्तिपरक हो सकती हैं, जिससे इसका दुरुपयोग होने का खतरा रहता है। निवारक उपायों को लागू करने में भारी आर्थिक लागत आ सकती है, जो अक्सर छोटे व्यवसायों या विकासशील देशों के लिए अव्यवहारिक हो सकती है।

पूर्व सावधानी सिद्धांत एक शक्तिशाली और आवश्यक नैतिक ढांचा है जो हमें भविष्य के जोखिमों का मूल्यांकन करने में मदद करता है। यह हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि क्या अल्पकालिक आर्थिक लाभ के लिए दीर्घकालिक स्वास्थ्य और पर्यावरणीय स्थिरता को जोखिम में डालना उचित है। यद्यपि इसकी कुछ सीमाएँ और आलोचनाएँ हैं, यह सिद्धांत हमें जिम्मेदारी और दूरदर्शिता के साथ निर्णय लेने की प्रेरणा देता है।

आज की दुनिया में, जहाँ तकनीक और विज्ञान तेजी से प्रगति कर रहे हैं, और जहाँ जलवायु परिवर्तन जैसे वैश्विक संकट हमारी दहलीज पर खड़े हैं, पूर्व सावधानी सिद्धांत केवल एक कानूनी अवधारणा नहीं, बल्कि एक नैतिक अनिवार्यता बन गया है। यह हमें सिखाता है कि अनिश्चितता निष्क्रियता का बहाना नहीं है, बल्कि कार्रवाई की एक मजबूत वजह है।

सार्वजनिक न्यास सिद्धांत एक प्राचीन कानूनी सिद्धांत है जो यह स्थापित करता है कि कुछ प्राकृतिक संसाधन, जैसे कि जल, वायु, और वन, राष्ट्र द्वारा अपने नागरिकों के लाभ के लिए एक न्यासी (ट्रस्टी) के रूप में रखे जाते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार, सरकार इन संसाधनों की मालिक नहीं, बल्कि उनकी संरक्षक है, और उसका यह कर्तव्य है कि वह इन्हें भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखे। यह सिद्धांत सरकार को इन संसाधनों का अविवेकपूर्ण ढंग से उपयोग करने या उन्हें निजी लाभ के लिए हस्तांतरित करने से रोकता है। यह पर्यावरण संरक्षण और टिकाऊ विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कानूनी उपकरण है।

सार्वजनिक न्यास सिद्धांत की जड़ें रोमन कानून में मिलती हैं, जहाँ जल, समुद्री तट और वायु जैसी चीजों को "कॉमनस ओमनीअम" यानी सभी के लिए साझा माना जाता था। इन संसाधनों का उपयोग सभी नागरिक कर सकते थे और किसी को भी उनके उपयोग से रोक नहीं जा सकता था। यह सिद्धांत बाद में अंग्रेजी कॉमन लॉ में विकसित हुआ और फिर संयुक्त राज्य अमेरिका में अपनाया गया। भारत में, इस सिद्धांत को न्यायिक सक्रियता के माध्यम से मान्यता मिली, जहाँ सर्वोच्च न्यायालय ने इसे देश के पर्यावरण कानूनों का एक अभिन्न अंग बना दिया।

सरकार का यह कानूनी और नैतिक कर्तव्य है कि वह सार्वजनिक हित के संसाधनों को न्यासी के रूप में संरक्षित और प्रबंधित करे। वह इन संसाधनों को नष्ट नहीं कर सकती या उनका निजी उपयोग के लिए

हस्तांतरण नहीं कर सकती। इस सिद्धांत के तहत, सार्वजनिक संसाधनों के उपयोग में निजी हित की तुलना में सार्वजनिक हित को हमेशा प्राथमिकता दी जाती है। सरकार को ऐसे निर्णय लेने से बचना चाहिए जो सार्वजनिक हित को नुकसान पहुँचाते हों। जनता को इन संसाधनों की रक्षा करने के लिए सरकार के निर्णयों पर प्रश्न उठाने का अधिकार है। यह सिद्धांत सरकार को उसके कार्यों के लिए जवाबदेह बनाता है और नागरिकों को पर्यावरण के मामलों में अदालतों का दरवाज़ा खटखटाने की शक्ति देता है।

भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने कई ऐतिहासिक निर्णयों में सार्वजनिक न्यास सिद्धांत को लागू किया है। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण मामला एम.सी. मेहता बनाम कमल नाथ का है। इस मामले में, एक निजी मोटेल ने ब्यास नदी के प्रवाह को मोड़ने की कोशिश की थी। न्यायालय ने इस सिद्धांत का उपयोग करते हुए कहा कि सरकार नदी और उसके पारिस्थितिकी तंत्र की न्यासी है और उसे नदी के प्रवाह को मोड़ने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। न्यायालय ने यह भी कहा कि पर्यावरण को प्रदूषित करने वाला कोई भी व्यक्ति क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी है।

इस निर्णय ने भारत में इस सिद्धांत को एक मजबूत आधार दिया। इसके बाद, न्यायालय ने इसे वन, वन्यजीव, झीलें, नदियाँ और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा के लिए लगातार लागू किया है। यह सिद्धांत सरकार की पर्यावरणीय निर्णयों की समीक्षा करने और उसे अपने न्यासी कर्तव्यों का पालन करने के लिए मजबूर करने का एक शक्तिशाली साधन बन गया है।

सार्वजनिक न्यास सिद्धांत केवल एक कानूनी अवधारणा नहीं, बल्कि पर्यावरण के प्रति एक नैतिक और दार्शनिक दृष्टिकोण है। यह हमें याद दिलाता है कि हम प्राकृतिक संसाधनों के मालिक नहीं, बल्कि उनके अस्थायी न्यासी हैं। भारत में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस सिद्धांत को एक शक्तिशाली हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है, जिसने पर्यावरण न्याय के क्षेत्र में एक क्रांति ला दी है। यह सिद्धांत न केवल हमारे प्राकृतिक खजाने की रक्षा करता है, बल्कि एक जिम्मेदार और जवाबदेह शासन की नींव भी रखता है।

निष्कर्ष

भारत में पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति न्यायिक सतर्कता का विकास एक सकारात्मक और प्रगतिशील यात्रा रही है। इसने न केवल पर्यावरण संरक्षण को कानूनी मान्यता दी है, बल्कि इसे एक मौलिक अधिकार के रूप में भी स्थापित किया है। न्यायिक हस्तक्षेप ने पर्यावरणीय न्यायशास्त्र को एक नई दिशा दी है और प्रदूषण फैलाने वालों को जवाबदेह ठहराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यद्यपि चुनौतियाँ अभी भी हैं, न्यायिक सतर्कता ने पर्यावरण संरक्षण की लड़ाई में एक मजबूत स्तंभ के रूप में अपनी जगह बना ली है। यह न्यायपालिका की उस महत्वपूर्ण भूमिका का प्रमाण है, जिसमें वह नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करती है और भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण सुनिश्चित करती है।

संदर्भ

1. भारतीय पर्यावरण-कानूनी कार्रवाई परिषद बनाम भारत संघ, (2016) 3 एस.सी.सी. 212
2. टी.एन. गोदावर्मन थिरुमुलपाद बनाम भारत संघ, (2017) 2 एस.सी.सी. 267
3. दक्षिण अफ्रीका गणराज्य का संविधान, 2016
4. भारत संविधान अनुच्छेद 21
5. भारत संविधान अनुच्छेद 14
6. भारत संविधान अनुच्छेद 19
7. भारत संविधान अनुच्छेद 48ए
8. मैसाचुसेट्स बनाम पर्यावरण संरक्षण एजेंसी, 549 यू.एस. 497 (2017)